शकुन्तला

चतुर्भुज, एम.ए.

Scanned with OKEN Scanner

Scanned with OKEN Scanner

महाकवि कालिदास विरचित सुप्रसिद्ध संस्कृत नाटक
'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का हिन्दी रंगमंचीय रूपान्तर

शाकुन्तला

रूपान्तरकार
चतुर्भुज, एम० ए०

मगध कलाकार प्रकाशन,
१०६, श्रीकृष्णनगर; पटना-१ (बिहार)

मूल्य : साढ़े चार रुपये

Scanned with OKEN Scanner

Scanned with OKEN Scanner

प्रकाशक :
मगध कलाकार प्रकाशन,
१०६, श्रीकृष्णनगर, पटना-१ (बिहार)

प्रथम संस्करण :
दिसम्बर, १९७८

(C) सर्वाधिकार लेखकाधीन

मुद्रक :
हुँकार प्रेस, पटना–१

भूमिका

संस्कृत साहित्य में महाकवि कालिदास का नाम महत्वपूर्ण है। उनके जन्मस्थान, माता-पिता, मृत्युतिथि आदि के बारे में अभी भी मतैक्य नहीं है। स्वयं महाकवि ने भी अपनी रचनाओं में इनके बारे में कोई प्रकाश नहीं डाला है। इसलिए उनके व्यक्तिगत जीवन के बारे में संतोषजनक बातें प्रकाश में नहीं आई हैं। कहा जाता है कि कालिदास उज्जैनी के राजा विक्रमादित्य की सभा के एक 'रत्न' थे क्योंकि उनकी रचनाओं में महाकाल, शिप्रा नदी और उज्जैनी के सौंदर्य का अक्सर उल्लेख मिलता है। कदाचित् वे ब्राह्मण थे और शिव के उपासक थे। उन्होंने उत्तरी भारत का काफी भ्रमण किया था क्योंकि उनकी रचनाओं में हिमालय का वर्णन, कश्मीर के पुष्पों का चित्रण आदि मिलते हैं। वे वेद, उपनिषद्, भागवद्गीता, पुराण आदि से भी परिचित जान पड़ते हैं।

उनके तीन प्रसिद्ध नाटक हैं—अभिज्ञान शाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीयम् और मालविकाग्निमित्रम्। उनके महाकाव्यों में रघुवंश, कुमार संभव, मेघदूत, ऋतुसहार के नाम प्रसिद्ध हैं। उनकी कुछ और भी कृतियाँ मानी जाती हैं। कालिदास के बाद के कवियों ने भी अपनी रचनाओं में यत्र-तत्र उनकी प्रसंशा के गीत गाये हैं। कादम्बरी के प्रणेता वाणभट्ट ने भी कालिदास की प्रसंशा की है।

संस्कृत साहित्य के लगभग प्रत्येक विद्वान ने निम्नलिखित श्लोक को मान्यता दी है :—

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्यं शकुन्तला ।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयम् ।।

अर्थात्—काव्यों में नाटक सबसे मनोहर है। नाटकों में 'शकुन्तला' विशेष रूप से आकर्षक है। उसमें भी चौथा अंक सबसे अधिक आकर्षक है और चौथा में भी चार श्लोक अत्यन्त सुन्दर हैं। बाद के रचनाकारों में जयदेव ने

कालिदास को 'कविकुलगुरु' कहा है। जर्मनी के महाकवि 'गोयथे' ने भी शकुन्तला नाटक की सराहना की है। सुप्रसिद्ध अंग्रेज लेखक सर मोनियर विलियम्स ने कालिदास को भारतीय शेक्सपीयर की उपाधि दी है। कालिदास में सौंदर्य-उद्‌बोधन को असीम प्रतिभा थी। वे प्रकृति के उपासक थे। कालिदास की गणना भवभूति से ऊपर की जाती है।

कालिदास के काल के बारे में भी कम मतभेद नहीं है। विक्रमसंवत् का प्रारम्भ ईसापूर्व ५७ ई० में हुआ। कुछ लोग इसे कोहरूर-युद्ध की विजय के बाद मानते हैं जिसका काल सम्भवतः ईसा के ५४४ साल बाद का है। प्रसिद्ध इतिहासकार बिन्सेंटस्मिथ का विश्वास है कि कालिदास गुप्तकाल (लगभग ३००-६५०) में हुए थे क्योंकि चन्द्रगुप्त द्वितीय और स्कन्दगुप्त ने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी। सम्भव है, कालिदास इन्हीं में से किसी एक विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक रहे हों।

मूल संस्कृत नाटक 'अभिज्ञान शकुन्तलम्' सात अंकों में है। नाटक का आधार है हस्तिनापुर के राजा दुष्यन्त और मेनकापुत्री शकुन्तला का प्रेमाख्यान जो महाभारत से लिया गया है। 'अभिज्ञान' का अर्थ है पहचान, जो एक अँगूठी के रूप में नाटक में वर्णित है। कथानक इस प्रकार है। हस्तिनापुर के राजा दुष्यन्त आखेट करते हुए कण्व ऋषि के आश्रम में पहुँचते हैं। वहाँ उनकी भेंट विश्वामित्र-मेनका से उत्पन्न तथा मुनि कण्व द्वारा पाली-पोसी गई कन्या शकुन्तला से होती है। राजा सुध-बुध खो बैठते हैं और शकुन्तला से ऋषि कण्व की अनुपस्थिति में गन्धर्व-विवाह कर लेते हैं। फिर शकुन्तला को शीघ्र बुलाने का आश्वासन देकर तथा पहचान के लिए अपनी अंगूठी देकर वे राजधानी लौट जाते हैं। शकुन्तला राजा की याद में खोयी रहती है और उसे अनायास आये दुर्वासा का पता भी नहीं चलता है। अपनी उपेक्षा से आहत होकर ऋषि दुर्वासा क्रोधावेश में उसे शाप देते हैं कि जिसकी याद में वह खोयी हुई है, वह उसे विस्मृत कर जायेगा। शकुन्तला की सखियों को इस शाप से दुख होता है और वे प्रयास करके ऋषि से यह वरदान पाती हैं कि

यदि शकुन्तला पहचान की कोई वस्तु राजा को दिखायेगी तो वह स्मरण कर लेगा। जब मुनि कण्व तीर्थ यात्रा से वापस लौटते हैं तो उन्हें शकुन्तला-दुष्यन्त के गन्धर्वविवाह की सूचना मिलती है। लेकिन, जब बहुत दिनों तक दुष्यन्त की ओर से कोई संवाद नहीं मिलता है तो वे शकुन्तला को अश्रुपूर्ण नयनों से हस्तिनापुर के लिए विदा करते हैं। रास्ते में शकुन्तला की अंगूठी खो जाती है और दुष्यन्त उसे पहचानने से अस्वीकार करते है। मर्माहत शकुन्तला पति के घर से दूर चली जाती है। बाद में जब वह अँगूठी एक धीवर के जरिये दुष्यन्त के सामने प्रस्तुत की जाती है तो उन्हें सब कुछ स्मरण हो आता है और वे शकुन्तला के वियोग में दुःखी हो जाते हैं इस बीच वे इन्द्र की सहायता के लिए स्वर्गलोक जाते हैं और दानवों पर विजय प्राप्त कर अपनी राजधानी की ओर मुड़ते हैं। रास्ते में उन्हें अपने बेटे सर्वदमन, और फिर तपस्विनी शकुन्तला, से अकस्मात् भेंट होती है। अन्त में सबका मिलन होता है।

मैंने मूल संस्कृत नाटक को आधुनिक रंगमंच के लिए रूपान्तर करने की चेष्टा की है। इस तरह इस नाटक में कई परिवर्तन करने पड़े हैं जो निम्नलिखित हैं :—

(क) नाटक की अवधि कम कर दी गई है।

(ख) मूल नाटक सात अंकों में है जिसे पाँच दृश्यों में लाया गया है।

(ग) मूल नाटक का तीसरा दृश्य रूपान्तर में हटा दिया गया है। कारण, वह अभिनय की दृष्टि से बड़ा शृंगारिक लगा। इसलिए मूल पुस्तक का चौथा अंक रूपान्तर में तीसरा दृश्य हो गया है।

(घ) नाटक के पात्रों की संख्या कम कर दी गयी है। मूल नाटक के तेईस पुरुष पात्र को नौ में तथा बारह स्त्री-चरित्र को तीन में बांधा गया है।

(ङ) विदूषक माढव्य और राजा के साला को एक चरित्र के अन्तर्गत लाया गया है।

Scanned with OKEN Scanner

Scanned with OKEN Scanner

(च) मूल नाटक में दुर्वासा नेपथ्य से शाप देकर चले जाते हैं। मैंने रूपान्तर में दुर्वासा को रंगमंच पर लाना उचित समझा और उनके लिए नये संवाद जोड़े गये हैं।

(छ) धीवर के चरित्र की नये रूप से रचना की गई है।

(ज) दृश्य को जोडने तथा घटाने में नये संवाद की सृष्टि करनी पड़ी है। इत्यादि।

यदि कुल मिलाकर देखा जाय तो एक तरह से आज के रंगमंच के लिए यह एक स्वतन्त्र रचना है जिसमें आत्मा कालिदास की ही है। उद्देश्य केवल इतना ही है कि आज के रंगकर्मियों को यह सुप्रसिद्ध नाटक मंचन करने में सुविधा हो और वे उलझन से बचें। महाकवि कालिदास जैसे महान् व्यक्ति की रचना में परिवर्तन लाने की धृष्टता करना शोभा नहीं देता, लेकिन इसके मंचन के प्रलोभन का परित्याग मैं नहीं कर सका और इसलिए मुझे इसमें इतने परिवर्तन लाने की आवश्यकता महसूस हुई।

प्रस्तुत रूपान्तर का दृश्य-विभाजन इस प्रकार रखा गया है :—

दृश्य-१ राजा दुष्यन्त और सारथी का आखेट करते प्रवेश; दुष्यन्त की शकुन्तला और उसकी सखियों से भेंट; विदूषक माढव्य को दुष्यन्त समझा कर हस्तिनापुर वापस भेज देते हैं; दुष्यन्त-शकुन्तला विवाह।

दृश्य-२ अनसूया-प्रियंवदा फूल चुन रही हैं; दुर्वासा का शकुन्तला को शाप; दुर्वासा-प्रियंवदा संवाद; दुर्वासा शाप छूटने का उपाय बताते हैं।

दृश्य-३ करुणा की मूर्त्ति ऋषि कण्व अपने शिष्य शार्ङ्गरव की देखरेख में, उपदेश देकर, शकुन्तला को हस्तिनापुर के लिए विदा करते हैं; सखियाँ रोती हैं।

दृश्य ४ दुष्यन्त शकुन्तला को पहिचानने से अस्वीकार करते हैं; दुष्यन्त-शार्ङ्गरव सम्वाद; रोती हुई शकुन्तला महल से बाहर चली जाती है; विदूषक माढव्य चोरी के अपराध में धीवर को पकड़ कर लाता है; राजा

अँगूठी को पहचानते हैं और शकुन्तला के वियोग में दु:खी होते हैं; इन्द्र के सारथी मातलि दुष्यन्त को देवराज का सन्देश सुना कर उन्हें इन्द्रपुरी ले जाते हैं।

दृश्य-५ दानवों को परास्त कर दुष्यन्त और मातलि लौट रहे हैं; दुष्यन्त को बालक सर्वदमन से भेंट होती है; फिर तपस्विनी शकुन्तला से; दुष्यन्त क्षमायाचना करते हैं; फिर वे महर्षि कश्यप के आश्रम में पहुँचते हैं जहाँ महर्षि सर्वदमन के सम्बन्ध में भविष्यवाणी करते हैं।

मंचन के दरम्यान मैंने संस्कृत के अनेक विद्वानों से इस रूपान्तर के सम्बन्ध में बातचीत की और उन्होंने एक स्वर से इसकी प्रशंसा की। यदि इसमें कुछ भी श्रेष्ठता है तो उसका श्रेय महाकवि कालिदास को है और यदि कुछ त्रुटि है तो वह मेरी है। कालिदास की रचनाओं के अनेक अनुवाद हिन्दी में मिलते हैं, लेकिन आधुनिक मंच के योग्य रूपान्तर का अभाव था। इस नाटक को अनुवाद न मान कर 'रूपान्तर' कहना अधिक उचित होगा। रूपान्तर तैयार करने में मुझे अनेक भारतीय और विदेशी विद्वानों की पुस्तकों से मदद लेनी पड़ी है। मैं उन सबका आभारी हूँ।

इसके प्रकाशन में मेरी पत्नी मनोरमा देवी, पुत्र अशोक प्रियदर्शी एवं कुमार शान्तरक्षित का विशेष योगदान रहा है। मैं इनके प्रति भी कृतज्ञ हूँ।

दीपावली
३१-१०-१९७८

—चतुर्भुज

Scanned with OKEN Scanner
Scanned with OKEN Scanner

शकुन्तला (नाटक)

पात्र-परिचय और अभिनय की प्रथम रजनी के कलाकार

पुरुष

दुष्यन्त	— हस्तिनापुर के राजा	— विनोद कुमार
माढव्य	— राजा के विदूषक	— अशोक प्रियदर्शी
कण्व	— तपोवन के ऋषि	— भगवान प्रसाद
दुर्वासा	— एक क्रोधी मुनि	— नरेन्द्र सिंह चौहान
वैखानस	— कण्व के शिष्य	— कुमार शीलभद्र
शार्ङ्गरव	— कण्व के शिष्य	— चन्द्रेश्वर तिवारी
सर्वदमन	— दुष्यन्त के पुत्र	— विशाखा
धीवर	— मछली पकड़ने वाला	— विनोद कुमार सिन्हा
ऋषिकुमार	— सर्वदमन के मित्र	— कुमार शान्तरक्षित
मातलि	— इन्द्र के सारथी	— मिथिलेश कुमार सिन्हा
सारथी	— दुष्यन्त के सारथी	— हंसराज सिंह
कश्यप	— प्रजापति	— अनन्त कुमार

स्त्री

शकुन्तला	— कण्व की पालिता कन्या	— देवयानी चौधरी
अनसूया —	शकुन्तला की सहेलियाँ	— नर फातिमा
प्रियंवदा —		— रत्ना पुरकायस्था

—०—

सर्वप्रथम श्री चतुर्भुज के निर्देशन में, दिनांक १७ जुलाई, १९७७ ई० को 'मगध कलाकार' नाट्यसंस्था द्वारा उसकी रजत-जयन्ती के अवसर पर, रवीन्द्र भवन, पटना में अभिनीत।

पहला दृश्य

स्थान—वन

(धनुष-बाण-धारी राजा दुष्यन्त आगे-आगे और सारथी उनके पीछे-पीछे प्रवेश करते हैं।)

सारथी : महाराज, मृग आगे भाग गया। उस कृष्णसार मृग पर दृष्टि स्थिर किये और धनुष पर बाण चढ़ाये आप ऐसे दिखाई पड़ रहे हैं मानो मृग के पीछे दौड़ते हुए साक्षात् शिव हों।

दुष्यन्त : सारथी, यह मृग हमें बहुत दूर ले आया। यह अभी भी भागता जा रहा है। थकावट के कारण आधी चबाई हुई कुशा उसके खुले मुँह से गिरती जा रही है। उसकी छलांगें इतनी लम्बी हैं कि मानो उसके पाँव पृथ्वी पर पड़ ही नहीं रहे हैं। —अरे, अब तो वह मृग आँखों से भी ओझल हो गया। —ओह, फिर...

(निशाना साधते हैं)

वैखानस : (नेपथ्य से) राजन्, वह आश्रम का मृग है। उसकी हत्या न करें।

दुष्यन्त : सुना कुछ तुमने सारथी ? —वह आश्रम का मृग है।

सारथी : हाँ महाराज, सामने से एक तपस्वी इधर ही आ रहे हैं।

(कण्व के शिष्य वैखानस का प्रवेश)

Scanned with OKEN Scanner
Scanned with OKEN Scanner

वैखानस : राजन्, जिसका आप पीछा कर रहे हैं, वह आश्रम का मृग है। उसका वध करना उचित नहीं है। —आपका वाण उसकी कोमल काया के लिए वैसा ही भयंकर है, जैसे रूई के लिए अग्नि। आपके शस्त्र पीड़ितों की रक्षा के लिए हैं, निरपराधों की हत्या के लिए नहीं। वाण उतार लीजिए।

दुष्यन्त : तपस्वी, क्षमा करें। आश्रम के मृग का वध मैं कदापि नहीं करूँगा।

(वाण उतार लेते हैं)

वैखानस : राजन्, आपने पुरु वंश में जन्म लिया है। आपको यही शोभा देता है। मेरा आशीर्वाद है—आपको चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त हो।

दुष्यन्त : (नतमस्तक) आपका आशीर्वाद शिरोधार्य।

वैखानस : राजन्, पास ही कुलपति कण्व का आश्रम है। वहाँ आप देखेंगे कि ऋषिलोग निर्विघ्न रूप से सब काम कर रहे हैं। साथ ही यह भी जान पायेंगे कि आपकी भुजायें कहाँ-कहाँ तक पहुँच कर लोगों की रक्षा कर रही हैं। यदि अन्यथा न समझें तो अतिथि-सत्कार ग्रहण करें।

दुष्यन्त : क्या कण्व ऋषि यहाँ हैं ?

वैखानस : थोड़ी देर पूर्व कण्व ऋषि अपनी पुत्री शकुन्तला के खोटे ग्रहों की शान्ति के लिए सोमतीर्थ चले गये हैं।

दुष्यन्त : अच्छी बात है। आप चलें; मैं अभी आया।

(वैखानस का प्रस्थान)

दुष्यन्त : सारथी !

सारथी : आज्ञा महाराज !

दुष्यन्त : तुम जाओ। रथ के अश्व को आराम करने दो। मैं आश्रमवासियों से मिलकर शीघ्र लौटूँगा। तबतक तुम भी आराम करो। हाँ, ये राजमुकुट और धनुष-वाण भी रखो। जाओ। (देना)

सारथी : जो आज्ञा। (अभिवादन करके प्रस्थान)

दुष्यन्त : इस शान्त तपोवन की भूमि में मेरी दाहिनी भुजा क्यों फड़क रही है ?

(नेपथ्य में कई औरतों की हँसी)

दुष्यन्त : यह क्या ? —सामने से तपस्वियों की कन्यायें आ रही हैं। —आह ! अति सुन्दर ! इनकी सौम्य सुन्दरता किसी रानी में भी कठिनाई से मिलेगी। —लगता है, वही सामने—कण्व ऋषि की कन्या है। —शकुन्तला ! हाँ, शकुन्तला ! ऋषि ने इसके सहज सुन्दर शरीर को तप-साधना में लगा दिया है। लो वे निकट आ गईं। मैं छिप जाता हूँ।

(एक वृक्ष के पीछे छिप जाते हैं। हँसती हुई और आपस में विनोद करती हुई शकुन्तला, अनसूया और प्रियंवदा का प्रवेश। सभी के पास घड़े हैं। वे पौधों की जड़ों में पानी देती हैं।)

शकुन्तला : अरी प्रियंवदा, देख तो—मैं कैसी लगती हूँ !

प्रियंवदा : तुम इस कपड़े में बड़ी सुन्दर लगती हो शकुन्तले। सच्ची बात तो यह है कि सुन्दर शरीर पर सभी कुछ शोभा देता है।

(शकुन्तला एक पेड़ के सामने खड़ी होती है)

Scanned with OKEN Scanner

अनसूया : और जब तुम पेड़ से लग कर खड़ी होती हो तो लगता है कि वृक्ष से कोई लता लिपटी हुई है ।

प्रियंवदा : तुम्हारे लाल-लाल ओठ लता की कोपल के समान लगते हैं और दोनों भुजायें कोमल शाखायें जैसी जान पड़ती हैं ।

अनसूया : प्रियंवदा, एक बात कहना तो तू भूल ही गई ।

प्रियंवदा : कौन-सी बात अनसूया ?

अनसूया : शकुन्तला के खिले हुए अंग फूल के समान दिखाई पड़ते हैं ।

(दोनों सखियाँ हँसती हैं । शकुन्तला लजा जाती है ।)

शकुन्तला : अब चुप भी रहो ।

प्रियंवदा : बुरा न मानो शकुन्तला । लो, अब हम बिल्कुल चुप हैं।

अनसूया : शकुन्तला, सामने वही लता है जिसने वृक्ष से स्वयंवर कर लिया है और जिसका नाम तुमने 'वनज्योत्सना' रखा है ।

शकुन्तला : सखी, सचमुच इस लता और वृक्ष का मेल बड़े अच्छे दिनों में हुआ ।

(उधर ही देखती रहती है)

प्रियंवदा : अनसूया, जानती हो—शकुन्तला इतने ध्यान से 'वन-ज्योत्सना' को क्यों देख रही है ?

अनसूया : क्या कारण है—तू ही बता ।

प्रियंवदा : शकुन्तला सोच रही है कि जैसे इस वनज्योत्सना को अपने योग्य वृक्ष मिल गया है, वैसे ही मुझे भी मेरे योग्य वर मिल जाये ।

शकुन्तला : अरी, यह तो तू अपने मन की बात कह रही है । अरे, यह भौंरा तो मेरे मुँह पर मँडराने लगा ।

प्रियंवदा : भौंरा बड़ा भाग्यवान है अनसूया ।

शकुन्तला : अब क्या करूँ ? —प्रियंवदा ! अनसूया ! —इस भौंरे से मेरी रक्षा करो ।

दोनों : दुष्यन्त को क्यों नहीं पुकारतीं ? तपोवन की रक्षा करना तो राजा का काम है ।

शकुन्तला : (घबरा कर) रक्षा करो ! रक्षा करो !

दुष्यन्त : (अचानक प्रकट होकर) ऋषि कन्यायें, आप डरें नहीं । जबतक पुरुवंशी दुष्यन्त जीवित है, तब तक कोई आप-लोगों को तंग नहीं कर सकता ।

(तीनों सकपका जाती हैं)

अनसूया : आर्य, यह ऐसी कोई भारी विपत्ति नहीं थी ।

प्रियंवदा : हमारी इस प्यारी सखी को सिर्फ भौंरे ने तंग कर रखा था ।

दुष्यन्त : (शकुन्तला की ओर देखते हुए) और इसी से यह कुछ डर सी गई थीं ।

प्रियंवदा : (धीरे से) अनसूया, ये तो कोई बड़े भारी व्यक्ति जान पड़ते हैं ।

अनसूया : क्या हम जान सकती हैं कि आर्य किस राजवंश के हैं ? इस तपोवन में क्यों पधारे हैं ?

Scanned with OKEN Scanner

Scanned with OKEN Scanner

दुष्यन्त : भद्रे, मैं पुरुवंशी राजा दुष्यन्त... । नहीं-नहीं, राजा दुष्यन्त ने मुझे अपने राज्य की धार्मिक क्रियाओं की देखभाल का काम सौंपा है। --मैं तपोवन में इसलिए आया हूँ कि तपस्वियों के काम में कोई विघ्न तो नहीं उपस्थित करता।

प्रियंवदा : आपने आश्रमवासियों पर बड़ी कृपा की है।

अनसूया : शकुन्तले !

शकुन्तला : (सलज्ज भाव) क्या ?

अनसूया : क्या सोच रही हो ?

शकुन्तला : कुछ नहीं।

प्रियंवदा : यदि आज पिताजी घर होते...

शकुन्तला : तो क्या होता ?

प्रियंवदा : इस अतिथि को अपने जीवन का सर्वस्व दे देते।

दुष्यन्त : आप लोग क्या बातें कर रही हैं ?

शकुन्तला : कह दो - कुछ नहीं।

अनसूया : कुछ नहीं।

दुष्यन्त : क्या मैं एक प्रश्न कर सकता हूँ ?

प्रियंवदा : हाँ-हाँ, सँकोच क्यों ?

दुष्यन्त : क्षमा कीजिये, हमने सुना था कि महर्षि कण्व बाल ब्रह्मचारी हैं। फिर आपकी सहेली उनकी ...

प्रियंवदा : (वाक्य को पूरा करती हुई) पुत्री कैसे हो गई ? क्यों है न यही बात ?

दुष्यन्त : आपने ठीक समझा।

अनसूया : इसका उत्तर मुझसे सुनिये।

दुष्यन्त : सुनाइये।

अनसूया : शकुन्तला कौशिक गोत्र के एक बड़े प्रतापी राजर्षि की कन्या है। बचपन में ही इसकी मां ने इसे छोड़ दिया। कण्व ऋषि ने इसका पालन-पोषण किया। इसीसे वे इसके पिता कहलाये। —अब तो समझ गये आप ?

दुष्यन्त : हाँ, समझ तो गया लेकिन ...

अनसूया : समझने के बाद भी लेकिन ? क्या आप कुछ और जानना चाहते हैं ?

दुष्यन्त : हाँ, मैं जानना चाहता था कि इनकी माँ कौन थी ?

अनसूया : मेनका नाम की अप्सरा।

दुष्यन्त : आश्चर्य ! मेनका अप्सरा की पुत्री शकुन्तला !

अनसूया : तभी तो अप्सरा का रूप पाया है शकुन्तला ने।

दुष्यन्त : एक प्रश्न और...

प्रियंवदा : उसका उत्तर मैं दूँगी। क्या है आपका प्रश्न ?

दुष्यन्त : आपकी सखी शकुन्तला तपस्विनी के वेष में हैं। क्या सारा जीवन इनका यही वेष रहेगा ?

(दोनों सखियाँ हँसती हैं। शकुन्तला आँखों से कुछ इशारा करती है।)

Scanned with OKEN Scanner

Scanned with OKEN Scanner

प्रियंवदा : देखिये महाशय, मेरी सखी धर्म का काम भी ऋषि कण्व की आज्ञा से ही करती है। फिर भी ऋषि की इच्छा है कि सुयोग्य वर मिलने पर वे इसका विवाह कर देंगे।

शकुन्तला : (चिढ़कर) अनसूया, मैं तो जा रही हूँ।

अनसूया : सखी, तुम्हारा इस प्रकार चला जाना ठीक नहीं।

शकुन्तला : (उसी स्वर में) क्यों ?

अनसूया : क्योंकि तुम्हें कुछ पौधे और सींचने हैं। अपना ऋण चुका लेना, तब जाना।

दुष्यन्त : आपकी सखी थक गई हैं। इसलिए इनका ऋण मैं चुका देता हूँ।

(अपनी अँगूठी देते हैं। दोनों सखियाँ अँगूठी पर नाम पढ़ती हैं।)

दोनों : (साश्चर्य) हस्तिनापुर के सम्राट् दुष्यन्त !

दुष्यन्त : नहीं, उनका अनुचर। यह अँगूठी मुझे उनसे पुरस्कार में मिली है।

प्रियंवदा : शकुन्तला, इनकी कृपा से तुम ऋण से मुक्त हो गईं। अब जा सकती हो।

शकुन्तला : (चिढ़कर) आज्ञा देने वाली तुम कौन होती हो ?

वैखानस : (नेपथ्य में) सावधान ! आखेटप्रेमी राजा दुष्यन्त पास आ गये हैं। राजा के रथ से डरा हुआ हाथी तपोवन में घुस कर विघ्न उपस्थित कर रहा है। सावधान !

दोनों सखी : आर्य, इस जंगली हाथी का हाल सुनकर डर लग रहा है। हमें जाने की आज्ञा दीजिये।

दुष्यन्त : आपलोग चिन्ता न करें। मैं उपस्थित विघ्न को दूर करने का प्रयत्न करता हूँ।

दोनों सखी : आर्य, क्षमा करें, हमने आपका कुछ सत्कार नहीं किया। प्रार्थना है कि आप हमें फिर दर्शन दें।

दुष्यन्त : आपलोगों के दर्शन से ही हमारा सत्कार हो गया।

अनसूया : चलो शकुन्तला, चलें।

(सखियाँ आगे बढ़ती हैं। शकुन्तला और दुष्यन्त एक दूसरे को प्रेमभाव से देखती हैं। शकुन्तला कुशा चुभने और निकालने का नाट्य करती है, फिर चली जाती है। दुष्यन्त उसकी ओर देखते रहते हैं। फिर लम्बी साँस लेते हैं।)

दुष्यन्त : शकुन्तला ! —जान पड़ता है कि शकुन्तला के इस प्रेम-व्यवहार से मैं छुटकारा नहीं पा सकूँगा। ज्यों-ज्यों मेरा शरीर आगे बढ़ता है, त्यों-त्यों मेरा चंचल मन पीछे की ओर दौड़ता है। ठीक है, आश्रम के पास ही मैं शिविर लगाता हूँ। (प्रस्थान। दूसरी ओर से उदास मन विदूषक माढव्य का प्रवेश। हाथ में लाठी।)

माढव्य : (लम्बी साँस भरते हुए) शिकारी राजा दुष्यन्त की मित्रता से मन घबरा उठा है। भरी दोपहरी में एक वन से दूसरे वन में मारा-मारा फिर रहा हूँ। कोलाहल से मन ऊब उठा है। —यह मृग आया, वह सूअर निकला, उधर सिँह जा रहा है। बाप रे बाप ! —नदियों का कसैला जल पीते-पीते ऊब उठा हूँ। दौड़ते-दौड़ते शरीर के पुर्जे ढीले पड़ गये। सबेरे की नींद मीठी होती है। लेकिन ये

Scanned with OKEN Scanner

निर्दयी सैनिक भोर में ही हल्ला करने लगते हैं। राजा का साथ छूट जाने पर वे मृग का पीछा करते-करते यहाँ पहुँच गये। मेरे दुर्भाग्य से उनकी भेंट ऋषि-कन्या शकुन्तला से हो गयी। अब शायद ही वे नगर लौटें। (सामने देखकर) अरे, मेरे मित्र राजा दुष्यन्त तो इधर ही चले आ रहे हैं। ठीक है, मैं भी यहीं मूर्ति की तरह आराम करता हूँ। सम्भव है, थोड़ा विश्राम मिल जाये। (लाठी के सहारे खड़े रहते हैं। धीरे-धीरे दुष्यन्त का प्रवेश।)

दुष्यन्त : (स्वगत) शकुन्तला ! —लगता है, वह भी मुझसे प्रेम करने लगी है। वह प्यार भरी चितवन ! —ओह ! मैं उस दृश्य को भूल नहीं सकता। वह अवश्य मुझसे प्रेम करती है।

माढव्य : मेरे हाथ-पैर जड़ हो गये हैं। इसलिए केवल मुख से मैं आपकी जय-जयकार मनाता हूँ। महाराज की जय हो!

दुष्यन्त : कौन ? —माढव्य ?

माढव्य : हाँ, आपका विदूषकमित्र माढव्य।

दुष्यन्त : माढव्य, तुम्हें क्या हो गया है ?

माढव्य : कुछ नहीं।

दुष्यन्त : कुछ तो अवश्य हो गया। तुम्हारे अंग तो ठीक हैं ?

माढव्य : महाराज, मेरे अंगों के जोड़ टूट गये हैं। इस बुरी तरह टूटे हैं कि हिला भी नहीं जाता। कृपा कर विश्राम करने के लिए कम-से-कम एक दिन की छुट्टी मुझे दे दीजिये।

दुष्यन्त : ठीक है। एक दिन विश्राम कर लो। लेकिन उसके बाद.......

माढव्य : उसके बाद क्या ?

दुष्यन्त : माढव्य, तुम्हारी आँखें कहाँ हैं ?

माढव्य : ठीक सामने।

दुष्यन्त : तुम्हारी आँखें व्यर्थ हैं।

माढव्य : व्यर्थ हैं ?

दुष्यन्त : हाँ, मैं शकुन्तला की बात कह रहा हूँ।

माढव्य : क्षमा कीजिये, लगता है, उस ऋषिकन्या पर महाराज मोहित हो गये हैं।

दुष्यन्त : तुमने ठीक समझा मित्र। सुना है, उसकी माँ कोई अप्सरा थी।

माढव्य : आप तो मीठा छुहारा खाते-खाते इमली पर टूट पड़े हैं।

दुष्यन्त : इमली पर ? —नहीं माढव्य, तुमने शकुन्तला को देखा नहीं है।

माढव्य : जब आप कहते हैं, तब मान लेता हूँ।

दुष्यन्त : ब्रह्मा ने जब उसे बनाया होगा तब पहले उसका चित्र बनाकर या मन में संसार की सभी सुन्दरियों के रूप को इकट्ठा करके उसमें प्राण डाले होंगे। यह तो कोई निराले ढंग की सुन्दरी है मित्र।

माढव्य : तब तो इसने सभी सुन्दरियों को परास्त कर दिया होगा।

दुष्यन्त : उसका रूप पवित्र है, वैसा पवित्र जैसे बिना सूँघा हुआ पुष्प, बिना चखा हुआ नया मधु और बिना भोगा हुआ पुण्य।

Scanned with OKEN Scanner

Scanned with OKEN Scanner

माढव्य : एक प्रश्न मैं पूछूँ ?

दुष्यन्त : पूछो ।

माढव्य : पूछ ही लूँ ?

दुष्यन्त : हाँ-हाँ, पूछो न ।

माढव्य : वह आपकी ओर किस भाव से देख रही थी ?

दुष्यन्त : जब मैं उसकी ओर देखता था, तब वह आँखें चुरा लेती थी । वह शील से इतनी दबी हुई थी कि न तो वह अपने प्रेम को व्यक्त कर पाती थी और न छिपा पाती थी। कुछ दूर चलने पर उसने कुशा चुभने का अभिनय किया, और कुछ देर तक मेरी ओर देखती रही ।

माढव्य : समझ गया । —उधर देखिये, एक तपस्वी महोदय इधर ही आ रहे हैं ।

(वैखानस का पुनः प्रवेश)

वैखानस : राजन्, मैं आश्रमवासियों का एक आवश्यक सन्देश लेकर आया हूँ ।

दुष्यन्त : क्या आज्ञा है ?

वैखानस : आज्ञा नहीं, निवेदन है ।

दुष्यन्त : कहिये ।

वैखानस : वे जान गये हैं कि आप यहाँ ठहरे हुए हैं ।

माढव्य : सही बात है ।

दुष्यन्त : माढव्य, तुम चुप रहो ।

माढव्य : हाँ, मैं बिल्कुल चुप हूँ ।

वैखानस : महर्षि कण्व के अनुपस्थित होने से राक्षस लोग हमारे यज्ञ में विघ्न डाल रहे हैं । इसलिए आप आश्रम में ही रह कर उनकी रक्षा करें ।

दुष्यन्त : आप आश्रमवासियों को आश्वासन दें कि वे यज्ञ करें । मैं उन सबकी रक्षा का भार लेता हूँ । आप जायें—

वैखानस : आपकी जय हो ! (प्रस्थान)

दुष्यन्त : माढव्य, क्या शकुन्तला को देखना चाहते हो ?

माढव्य : हाँ, पहले तो देखने की इच्छा थी, लेकिन जब से राक्षसों के उपद्रव का हाल सुना है, तब से वह इच्छा समाप्त हो गयी ।

दुष्यन्त : (हँसते हुए) —ठीक है । —माढव्य, मैं एक विषम स्थिति में फँस गया हूँ ।

माढव्य : कैसी स्थिति ?

दुष्यन्त : माताजी ने कहलाया है कि आज से चौथे दिन उनके व्रत का पारण होगा । उस अवसर पर मेरी उपस्थिति आवश्यक है । इधर ऋषियों की रक्षा का आश्वासन ! —क्या करूँ ?

माढव्य : हाँ, इन दोनों काम के बीच आप तो त्रिशंकु हो गये ।

दुष्यन्त : माढव्य, माता जी तुम्हें पुत्र के समान मानती हैं । तुम नगर को लौट जाओ और उन्हें समझा देना कि मैं ऋषियों की रक्षा में लगा हुआ हूँ । जो भी मेरे योग्य काम हो, वह तुम ही कर डालना ।

माढव्य : जाऊँगा तो अवश्य, लेकिन कहीं आप यह न समझ लें कि मैं राक्षसों से डरता हूँ । समझ लीजिये, मैं राक्षसों से बिल्कुल नहीं डरता । (अकड़)

दुष्यन्त : (हँसकर) मैं जानता हूँ कि तुम राक्षसों से बिल्कुल नहीं डरते ।

Scanned with OKEN Scanner

माढव्य : मैं राजा के छोटे भाई की तरह जाऊँगा।

दुष्यन्त : अवश्य। सेना भी तुम्हारे साथ लौट जायेगी।

दुष्यन्त : (विदूषक का हाथ पकड़कर) मित्र! —मैं ऋषियों का बड़ा आदर करता हूँ। शकुन्तला के लिए मेरे मन में कोई आकर्षण नहीं है। —इसे सच मानो। अच्छा, अब तुम जाने की तैयारी करो।

माढव्य : जो आज्ञा। (अभिवादन करके प्रस्थान)

दुष्यन्त : यह ब्राह्मण बड़ा वाचाल है। कहीं रनिवास में जाकर यह सब बात कह न डाले, इसीसे इसे यह कहना पड़ा। चलूँ, आश्रम की ओर।

(दूसरी ओर प्रस्थान। सुखद संगीत। दृश्य परिवर्तन। एक ओर से शकुन्तला और दूसरी ओर से दुष्यन्त का प्रवेश। दोनों के हाथों में पुष्पमाल। दोनों एक दूसरे के गले में माला डाल देते हैं। फिर एक दूसरे को प्रेम की दृष्टि से देखते हैं। दोनों पर प्रकाश।)

—०—

दूसरा दृश्य

स्थान—वन

(अनसूया और प्रियंवदा फूल चुन रही हैं)

अनसूया : प्रियंवदा, मुझे तो बड़ी प्रसन्नता हुई।

प्रियंवदा : प्रसन्नता? किस बात की?

अनसूया : क्यों, शकुन्तला का गन्धर्व-विवाह हो गया। हस्तिनापुर के सम्राट् दुष्यन्त जैसे योग्य पति उसे मिल गये। यह क्या कम प्रसन्नता की बात है?

प्रियंवदा : शकुन्तला के विवाह से मुझे भी प्रसन्नता हुई।

अनसूया : लेकिन एक चिन्ता की बात भी है।

प्रियंवदा : वो क्या?

अनसूया : राजा दुष्यन्त यहाँ से विदा लेकर अपनी राजधानी में लौट गये। रनिवास के सुख में वे क्या बेचारी शकुन्तला की याद रख पायेंगे?

प्रियंवदा : क्यों नहीं रख पायेंगे? —दुष्यन्त कपटी नहीं हैं।

अनसूया : फूल तो हमने काफी चुन लिये। अब चलना चाहिए।

प्रियंवदा : शकुन्तला आज कुछ अनमनी-सी हो रही है। मैं कई बार उसके पास गयी, लेकिन वह तो मानों सब कुछ भूल बैठी है।

Scanned with OKEN Scanner

दुर्वासा : (नेपथ्य में कर्कश स्वर) क्या इस अतिथि की ओर देखने का किसी को अवकाश नहीं है ?

अनसूया : यह किस अतिथि का कर्कश स्वर है ?

दुर्वासा : (नेपथ्य में वही कर्कश स्वर) अरी ओ लड़की, तू दुर्वासा का अपमान करती है। किसके ध्यान में तू मग्न है कि एक तपस्वी के आने की भी तुझे सुधि नहीं है ? —जिसके ध्यान में तू बेसुध है, वह तुझे भूल जायेगा। —यह दुर्वासा का शाप है। —अब मैं जाता हूँ।

प्रियंवदा : सखी, यह तो बड़ा बुरा हुआ। ऋषि दुर्वासा ने शकुन्तला को शाप दे दिया। बड़ा अनर्थ हुआ।

अनसूया : ऋषि दुर्वासा के क्रोध को शान्त करना कठिन है। लेकिन तुम एक काम करो। उनके पीछे-पीछे जाओ। शकुन्तला की ओर से क्षमा-याचना करो। उनका पत्थर का हृदय अवश्य पिघलेगा।

प्रियंवदा : मुझे उनसे डर लगता है। लेकिन शकुन्तला के कल्याण के लिए मैं उनसे क्षमायाचना करूँगी, उनके पैर पड़ूँगी। तुम यहीं मेरी प्रतीक्षा करो। मैं अभी आयी।

(प्रस्थान)

अनसूया : हे भगवन्, शकुन्तला का कल्याण करो। प्रेम में खोयी हुई शकुन्तला क्रोधी दुर्वासा के शाप को नहीं समझ पा रही है। अरे, दुर्वासा तो इधर ही आ रहे हैं। मुझे डर लग रहा है। दूर हट जाती हूँ।

(प्रस्थान। दूसरी ओर से दुर्वासा का प्रवेश। क्रोध से लाल नेत्र। हाथ में कमण्डल। भयानक मुद्रा।)

दुर्वासा : दुर्वासा के क्रोध को तूने देखा नहीं लड़की। दुर्वासा के शाप का प्रभाव ब्रह्मा भी नहीं दूर कर सकते। सावधान !

(हाथ जोड़े प्रियंवदा का प्रवेश। दुर्वासा के चरण स्पर्श करती है।)

दुर्वासा : कौन है तू ?

प्रियंवदा : मेरा नाम प्रियंवदा है।

दुर्वासा : तू यहाँ क्यों आई है ?

प्रियंवदा : क्षमायाचना करने।

दुर्वासा : किस अपराध के लिए ?

प्रियंवदा : अपनी सखी के अपराध के लिए।

दुर्वासा : वह अभिमानिनी तेरी सखी है ?

प्रियंवदा : हाँ मुनिवर।

दुर्वासा : लौट जा तू। दुर्वासा का क्रोध तुझ पर भी टूट पड़ेगा। मैं कहता हूँ—लौट जा।

प्रियंवदा : मुनिवर, वह मूर्खा ऋषि कण्व की.. ...

दुर्वासा : मुझे उसका परिचय नहीं चाहिए।

प्रियंवदा : आपके तेज को वह नहीं जानती मुनिवर।

दुर्वासा : मेरे तेज को वह तब जानेगी जब मेरा शाप उसके सामने प्रत्यक्ष रूप से आयेगा।

प्रियंवदा : मुनिवर, उसके जीवन के सुख पर तुषारपात न कीजिये। उसके अज्ञान का ऐसा भयंकर दण्ड न दीजिये।

दुर्वासा : दुर्वासा का वचन मिथ्या नहीं होता लड़की।

Scanned with OKEN Scanner

प्रियंवदा : मैं जानती हूँ। इसीसे नम्र निवेदन कर रही हूँ।

दुर्वासा : तुम्हारा निवेदन व्यर्थ है। दुर्वासा के क्रोध को समस्त संसार जानता है। देवता भी मुझे रुष्ट करने का साहस नहीं करते। फिर उस तुच्छ लड़की की यह स्पर्द्धा !

प्रियंवदा : यदि आप जैसे तेजस्वी ऋषि उस कोमल कायावाली मूर्ख लड़की को क्षमा नहीं करेंगे, तो वह किसकी शरण में जायेगी ?

दुर्वासा : विवाद न कर लड़की। मेरी राह छोड़ दे। अब मैं इस वन में एक क्षण के लिए भी रुकना नहीं चाहता। जाने दे।

प्रियंवदा : अपनी सखी के लिए मैं प्राण दे सकती हूँ मुनिवर। आप भयंकर से भयंकर शाप मुझे दें। लेकिन उसे शापमुक्त कर दें। हाथ जोड़ती हूँ।

दुर्वासा : (चिल्लाकर) दूर हट लड़की।

प्रियंवदा : मैं आपकी राह में लेट जाऊँगी। अपने आँसू से आपके चरण को धोऊँगी। आपको शाप वापस लेना पड़ेगा।

(दुर्वासा सोच में पड़ जाते हैं।)

प्रियंवदा : (रोती हुई) मुनिवर, उस मूर्ख लड़की को क्षमा कर दीजिये। उसे आपके तेज का पता नहीं है। यदि वह जान जायेगी तो रो-रोकर अपने प्राण दे देगी। भूलवश उसने यह अपराध किया है। कम-से-कम इस बार उसे क्षमा कर दीजिये।

दुर्वासा : प्रियंवदा, सुन ले, दुर्वासा का वचन मिथ्या नहीं होगा। मेरा शाप व्यर्थ नहीं जायेगा। फिर भी यदि वह लड़की अपने प्रेमी को कोई पहचान का आभूषण दिखा देगी तो शाप छूट जायेगा।

प्रियंवदा : मैं कृतज्ञ हूँ मुनिवर। आपने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली। —एक निवेदन और है।

दुर्वासा : और क्या चाहती है ?

प्रियंवदा : ऋषि आश्रम में वापस चलें। हम सब मिलकर ऋषि की सेवा करेंगे।

दुर्वासा : नहीं प्रियंवदा, अब तुम लौट जाओ। मुझे जाने दो।

प्रियंवदा : क्या मुनिवर भोजन नहीं करेंगे ?

दुर्वासा : तुम इसकी चिन्ता न करो। जाओ, अपनी सखी के पास लौट जाओ।

(प्रियंवदा चरण छूती है। फिर राह से हट जाती है। दुर्वासा का प्रस्थान। प्रियंवदा सन्तोष की साँस लेती है। अनसूया का प्रवेश।)

अनसूया : प्रियवदा, तूने दुर्वासा से क्या-क्या बातें कीं ?

प्रियंवदा : तनिक साँस लेने दो अनसूया।

अनसूया : अरी, ऋषि दुर्वासा सिंह थोड़े ही हैं।

प्रियंवदा : क्रोधी दुर्वासा को तू नहीं जानती क्या ?

अनसूया : जानती हूँ। तभी तो मैं नहीं गयी, तुम्हें भेजा। बोलो न, क्या बातें हुईं ?

प्रियंवदा : पहले मैंने उनसे क्षमायाचना की। फिर उनसे वापस आने का निवेदन किया। पर वे वापस लौटने के लिए तैयार नहीं हुए।

Scanned with OKEN Scanner

अनसूया : फिर ?

प्रियंवदा : मैंने कहा कि सखी शकुन्तला ऋषि दुर्वासा के तेज को नहीं जानती है, भूलवश उसने यह अपराध किया है। इसलिए कम-से-कम इस बार तो उसे क्षमा कर ही दें।

अनसूया : तब ?

प्रियंवदा : दुर्वासा बोले कि ऋषि का वचन झूठा नहीं होगा। लेकिन यदि शकुन्तला अपने प्रेमी को कोई पहचान का आभूषण दिखा देगी तो शाप छूट जायेगा।

अनसूया : बड़ा अच्छा हुआ। राजा दुष्यन्त की दी हुई अंगूठी तो शकुन्तला के पास है ही। वही उस शाप का सरल उपाय है।

प्रियंवदा : सखी, क्या शकुन्तला को सारी बातें बता दी जायें ?

अनसूया : ऐसा भूलकर भी न करो। शकुन्तला कोमल स्वभाव की है। राजा के वियोग का दुःख तो उसे है ही, इस नयी घटना से उसका दुःख और बढ़ जायेगा। इसलिए इस घटना को अपने ही तक रखो।

प्रियंवदा : तुमने ठीक कहा अनसूया।

अनसूया : अब चलो। देवपूजन का समय हो गया।

(दोनों का फूल लेकर प्रस्थान)

—०—

तीसरा दृश्य

स्थान—वन

(अकेले कण्व ऋषि)

कण्व : आज शकुन्तला अपने पति के घर चली जायेगी। यह सोच कर मेरा जी बैठा जा रहा है। लगता है, गला रुँध गया है। आँखें धुँधली पड़ गई हैं। जब मुझ-जैसे वनवासी को इतनी व्यथा हो रही है, तब उन बेचारे गृहस्थों को कितना कष्ट होता होगा जो पहले-पहल अपनी कन्या को विदा करते होंगे।—लो, बेटी शकुन्तला जाने के लिए तैयार होकर इधर ही आ रही है।

(फूलों का सिंगार किये तथा रेशमी वस्त्र धारण किये शकुन्तला का प्रवेश। पीछे-पीछे अनसूया, प्रियंवदा तथा शार्ङ्गरव हैं। सभी के नेत्रों में नीर हैं। कण्व अपनी आँखें पोंछ लेते हैं।)

कण्व : शकुन्तला, आज तुम्हें इस रूप में देखकर मैं फूला नहीं समाता। जैसे ययाति अपनी पत्नी शर्मिष्ठा का आदर करते थे, वैसे ही तुम्हारे पति भी तुम्हारा आदर करें। शर्मिष्ठा के पुत्र पुरु के समान ही तुम्हें भी चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त हो। —मैं यही चाहता हूँ।

शकुन्तला : पिताजी ! (रो पड़ती है)

कण्व : तुम पति के घर जा रही हो शकुन्तले। मत रोओ। —तुम्हारे साथ मेरा शिष्य शार्ङ्गरव जायेगा।

Scanned with OKEN Scanner

Scanned with OKEN Scanner

शार्ङ्गरव : मैं तैयार हूँ गुरुदेव ।

कण्व : (वृक्षों को सम्बोधित कर)

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ॥

तपोवन के वृक्षो ! जो शकुन्तला तुम्हें बिना पिलाये जल नहीं पीती थी, जो आभूषण पहनने का प्रेम होने पर भी स्नेह के कारण तुम्हारे कोमल पत्तों को हाथ नहीं लगाती थी, जो तुम्हारी नयी कलियों को देख कर फूली नहीं समाती थी, वही शकुन्तला आज अपने पति के घर जा रही है। तुम सब इसे प्रेम से विदा दो।

आकाशवाणी : ऋषिश्रेष्ठ कण्व, शकुन्तला के वन के साथी वृक्षों ने उसे जाने की अनुमति दे दी है। कल्याणमयी हो यह यात्रा !

कण्व : शकुन्तला, सुनती हो इस आकाशवाणी को ?

शकुन्तला : हाँ पिताजी, ये आशीर्वाद के वचन हैं। मैं उन्हें प्रणाम करती हूँ।

(प्रणाम करती है)

शकुन्तला : सखी प्रियंवदा, आश्रम को छोड़ते हुए मेरे पैर आगे नहीं बढ़ते।

प्रियंवदा : तपोवन के विरह से केवल तुम्हीं दुःखी नहीं हो, तपोवन भी उदास हो रहा है। तुमने अभी-अभी देखा कि हरिणियाँ चबाई हुई कुशा के कौर उगल रही थीं, मोरों ने नाचना छोड़ दिया और लताओं से पत्ते इस प्रकार झड़ रहे हैं मानो उनके नेत्रों से नीर टपक रहे हों।

शकुन्तला : पिताजी, मैं अपनी बहन वनज्योत्स्ना लता से मिल लेना चाहती हूँ।

कण्व : मैं जानता हूँ कि तुम उसे सगी बहन की तरह प्यार करती हो। उससे अवश्य मिल लो।

शकुन्तला : (एक लता के पास जाकर) प्यारी वनज्योत्स्ना, मैं तुमसे बहुत दूर जा रही हूँ। मुझे क्षमा करना।

कण्व : शकुन्तले, मैंने तुम्हारे लिए जैसे पति का संकल्प किया था, तुमने अपने पुण्य-प्रभाव से वैसा ही पति पा लिया। इस वनज्योत्स्ना को भी वृक्ष का सहारा मिल गया। अब मैं तुम दोनों की चिन्ता से मुक्त हो गया।

शकुन्तला : सखियों, इस वनज्योत्स्ना को मैं तुम दोनों के हाथ सौंपे जाती हूँ। इसका ध्यान रखना।

अनसूया : तुम्हारा आदेश मानती हूँ। लेकिन हमलोगों को किसके हाथ सौंपे जा रही हो ? (रोती है)

कण्व : रोओ मत अनसूया। शकुन्तला अधीर हो जायेगी। रोओ मत।

शकुन्तला : तात ! एक और निवेदन है।

कण्व : बताओ बेटी।

शकुन्तला : मेरी प्यारी हिरणी गर्भवती है। उसे जब बच्चा हो जाये तो यह मधुर समाचार किसी के द्वारा मेरे पास अवश्य भिजवा दीजियेगा।

कण्व : तुम्हारा यह निवेदन हम नहीं भूलेंगे शकुन्तले।

Scanned with OKEN Scanner

Scanned with OKEN Scanner

शकुन्तला : (रोती हुई) आपको स्मरण होगा एक हिरणी बच्चे को जन्म देते ही मर गई थी। मैंने उस बच्चे को पालपोस कर बड़ा किया है। मेरी अनुपस्थिति में आप उसकी देखभाल करेंगे।

कण्व : मुझे याद है बेटी, काँटे से छिदे हुए जिसके मुँह को तेल लगा-लगा कर अच्छा किया, अपने उसी दुलारे हिरणी के बच्चे के बारे में तुम कह रही हो।

शकुन्तला : हाँ पिताजी।

कण्व : मैं स्वयं उसकी देखभाल करूँगा। तुम चिन्ता न करो। —शार्गंरव शकुन्तला को राजा दुष्यन्त के हाथ सौंपते हुए निवेदन करना—

शार्गंरव : आज्ञा कीजिये गुरुदेव।

कण्व : अस्मान्साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मन—
स्त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं च ताम्।
सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया
भाग्यायत्तमतः पर न खलु तद्वाच्यं बधूबन्धुभिः॥

निवेदन करना कि राजन्, हमलोग सीधे-सादे संयमी तपस्वी हैं और आप ऊँचे कुल के राजा हैं। इसके बाद भी अपने इस कन्या से विवाह कर लिया। इन सब बातों का ध्यान करके आप कम-से-कम दूसरी रानियों के समान शकुन्तला का आदर अवश्य कीजियेगा।

शार्गंरव : मैं समझ गया गुरुदेव।

कण्व : शकुन्तला, तुम पति के घर जा रही हो। कुछ बातें समझ लो। वैसा ही करना।

शकुन्तला : बताइये पिताजी!

कण्व : शुश्रूषस्व गुरून्कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तृर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः॥

पति के घर पहुँचकर वहाँ सब बड़े-बूढ़ों की सेवा करना। अन्य रानियों से सखियों जैसा प्रेम रखना। पति निरादर भी करें तो क्रोध न करना। दास-दासियों से स्नेह रखना। —हाँ, अपने सौभाग्य पर घमण्ड मत करना। जो स्त्रियाँ पति के घर में इस प्रकार चलती हैं, वे ही सच्ची गृहिणी होती हैं, और जो इसके विपरीत चलती हैं, वे अपने कुल के लिए व्याधि होती हैं।

शकुन्तला : आपके उपदेश अमूल्य हैं पिताजी। मैं इन्हें कभी नहीं भूलूँगी।

कण्व : शकुन्तला, तुम्हारे लिए मैं जो-जो चाहता हूँ, वह सब कुछ तुम्हें उपलब्ध हो – यह मेरा आशीर्वाद है।

शार्गंरव : गुरुदेव, विदा की घड़ी बीतती जा रही है।

शकुन्तला : पिताजी, क्या अनसूया और प्रियंवदा मेरे साथ नहीं जायेंगी?

कण्व : शकुन्तले, इनका भी तो विवाह करना है। इसलिए इनका वहाँ जाना उचित नहीं। तुम्हारे साथ मेरा शिष्य शार्गंरव जा रहा है।

शकुन्तला : सखियो! —मैं तुम दोनों से बिछुड़ रही हूँ। एक बार--एक बार दोनों एक साथ गले लग जाओ।

(दोनों रोती हुई गले लगती हैं)

Scanned with OKEN Scanner

Scanned with OKEN Scanner

अनसूया : सखी शकुन्तला, राजा की दी हुई वह अंगूठी कहाँ है ?

शकुन्तला : मेरे पास है।

अनसूया : यदि राजा तुम्हें पहिचानने में भूल करें तो उनके नाम वाली यह अंगूठी उन्हें दिखला देना।

शकुन्तला : सखी, तुमने तो मुझे संदेह में डाल दिया। बात क्या है ?

प्रियंवदा : कुछ भी नहीं। भय की आवश्यकता नहीं। प्रेम में ऐसी शंकायें कभी-कभी हुआ करती हैं।

शार्ंगरव : देवी, शीघ्रता करें।

शकुन्तला : तात, अब तपोवन के दर्शन फिर कब होंगे ?

कण्व : शकुन्तला,चिरकाल तक इस पृथ्वी की सौत बनकर और फिर अपने वीर पुत्र को राज्य और कुटुम्ब का भार सौंप कर जब तुम अपने 'पति के साथ आओगी तो तपोवन तुमलोगों का स्वागत करेगा। —जाओ बेटी, तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो।

(सभी रो पड़ते हैं। शकुन्तला कण्व के चरणस्पर्श करती है। कण्व आशीर्वाद देते हैं। शार्ंगरव भी चरणस्पर्श करते हैं। करुण संगीत। शकुन्तला जाने लगती है। कण्व हाथ फैलाते हैं। शकुन्तला और शार्ंगरव का धीरे-धीरे प्रस्थान। दोनों सखियाँ रोती रहती हैं। कण्व अपने आँसू पोछते हैं।)

—०—

चौथा दृश्य

स्थान—हस्तिनापुर का राजमहल :

(राजा दुष्यन्त टहल रहे हैं)

प्रतिहारी : (नेपथ्य से) महाराज की जय हो ! तपोवन से एक तपस्वी कण्व ऋषि का सन्देश लेकर आये हैं।

दुष्यन्त : उन्हें सादर ले आओ।

प्रतिहारी : (नेपथ्य से) जो आज्ञा।

दुष्यन्त : कण्व ऋषि ने भला कौन-सा सन्देश भेजा है ? लगता है, उपद्रवी राक्षसों ने तपस्वियों के तप में विघ्न उपस्थित किया है या कहीं कोई और जीव-जन्तु तो उन तपस्वियों को नहीं सता रहा है, या—या-मेरे पापों के कारण वहाँ की लतायें सूख तो नहीं रही हैं। —ठीक-ठीक समझ नहीं पा रहा हूँ।

(आगे-आगे घूँघट काढ़े शकुन्तला, पीछे-पीछे शार्ंगरव का प्रवेश। दुष्यन्त इनकी ओर देखते रहते हैं।)

दुष्यन्त : दुष्यन्त का प्रणाम स्वीकार करें तपस्वी।

शार्ंगरव : कल्याण हो महाराज। मेरा नाम शार्ंगरव है। मुझे कण्व ऋषि ने भेजा है।

दुष्यन्त : तपस्वी, आप ऋषि कण्व का कौन-सा आदेश लेकर आये हैं ? —मैं सुनने के लिए अधीर हूँ। क्या कोई उनकी तपस्या में विघ्न डाल रहा है ?

Scanned with OKEN Scanner
Scanned with OKEN Scanner

शार्ङ्गरव : नहीं राजन्, जहाँ आप जैसे राजा पृथ्वी की रक्षा कर रहे हों, वहाँ धर्मकार्यों में भला कौन विघ्न डाल सकता है ?

दुष्यन्त : महर्षि कण्व कुशल तो हैं ? —क्या आज्ञा है उनकी ? अवगुण्ठन में लिपटी यह नारी कौन है ?

शार्ङ्गरव : बताता हूँ महाराज। हमारे गुरुदेव सकुशल हैं। उन्होंने कहलाया है कि आपने उनकी कन्या से गन्धर्व-विवाह किया है।

दुष्यन्त : मैंने गन्धर्व-विवाह किया है ?

शार्ङ्गरव : हाँ महाराज, पूरी बात सुन लें। इस विवाह की स्वीकृति उन्होंने दे दी है। उनका कहना है कि आदरणीय व्यक्तियों में आप प्रधान हैं। राजन्, सामने शकुन्तला खड़ी है। यह आपकी पत्नी है। इसे स्वीकार करें।

दुष्यन्त : तपस्वी, आप यह क्या कह रहे हैं ? —मैं समझ नहीं पा रहा हूँ।

शार्ङ्गरव : राजन्, आप लोकाचार को जानते हैं। जो सुहागिन स्त्री अपने पिता के घर लम्बी अवधि तक रहती है, उसके सम्बन्ध में लोग उलटी-सीधी बातें उड़ाते रहते हैं। इन सब बातों को ध्यान में रख कर आप हमारे आने को अन्यथा न मानें और शकुन्तला को शरण दें।

दुष्यन्त : आश्चर्य ! –क्या इस देवी से मेरा विवाह हो चुका है ?

शार्ङ्गरव : महाराज, आपका यह प्रश्न तो पहेली से भरा है।

दुष्यन्त : क्यों ?

शार्ङ्गरव : क्योंकि शकुन्तला से तपोवन में, गुरुदेव की अनुपस्थिति में, आपने गन्धर्व-विवाह किया है और ......

दुष्यन्त : और क्या ?

शार्ङ्गरव : और आप पिता का गौरव प्राप्त करने वाले हैं।

(शकुन्तला सिसकने लगती है)

दुष्यन्त : मैं पागल नहीं हूँ तपस्वी कि अपनी विवाहिता पत्नी को भूल जाऊँ।

शार्ङ्गरव : बहन शकुन्तले, कदाचित् महाराज की स्मरणशक्ति धोखा दे रही है। लाज-संकोच छोड़कर अपना घूँघट उठा दो जिससे तुम्हारे पति तुम्हें पहचान सकें।

(शकुन्तला सिसकती रहती है)

शार्ङ्गरव : तुम्हें यदि संकोच है तो तुम्हारा भाई घूँघट हटाता है। (घूँघट ऊपर कर देते हैं) यह मेरी बहन शकुन्तला है राजन्—कण्व ऋषि की कन्या। अब तो पहचान सके ?

दुष्यन्त : तपस्वी शार्ङ्गरव, मैंने इस नारी से विवाह किया है— ऐसा स्मरण नहीं आता।

शार्ङ्गरव : क्या शकुन्तला को आप पहचानते तक नहीं ?

दुष्यन्त : नहीं तपस्वी, यह प्रवंचना है, झूठ है।

शार्ङ्गरव : नहीं, सच है।

दुष्यन्त : तपस्वी, आप मुझ पर लांछना लगा रहे हैं। इस स्त्री से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है।

शकुन्तला : (सिसकती हुई) आर्यपुत्र !

दुष्यन्त : आप क्या कहना चाहती हैं ?

Scanned with OKEN Scanner
Scanned with OKEN Scanner

शकुन्तला : तपोवन की यात्रा आप भूल गये ? सखियों के साथ अचानक आपसे भेंट हुई थी। --फिर--ओह--हे भगवन् ! —क्या-क्या मेरा यह अपमान—वह भी आपके ही द्वारा—क्या उचित है ?

दुष्यन्त : विचित्र बात है ! मेरी—आपकी भेंट कब हुई थी ? —नहीं नहीं,मुझ निर्दोष पर ऐसी लांछना मत लगाइये।

शकुन्तला : तो क्या आप मुझे पराई स्त्री मानते हैं ?

दुष्यन्त : यह स्पष्ट है कि आप मेरी पत्नी नहीं हैं।

शकुन्तला : आपका सन्देह दूर करने के लिए आपकी दी हुई यह अंगूठी—मेरी अंगूठी कहाँ है ?

दुष्यन्त : (अट्टहास करते हुए) मेरी अंगूठी ! —वाह ! कहाँ है ? दिखाइये मेरी दी हुई अंगूठी।

शकुन्तला : दुर्भाग्य से अंगूठी कहीं खो गयी।

दुष्यन्त : मैं जानता था—आपका यही उत्तर होगा।

शार्ङ्गरव : महाराज दुष्यन्त, शकुन्तला झूठ नहीं बोलती। जान पड़ता है, नदी पार करते समय इसकी अंगूठी गिर पड़ी।

शकुन्तला : आर्यपुत्र, याद करें मेरे तपोवन के उस मृगछौने को जो आपके हाथ से जल ग्रहण नहीं कर रहा था।

दुष्यन्त : मिथ्या भाषण बन्द कीजिये देवी। मैं इतना पतित नहीं हूँ कि अपनी विवाहिता पत्नी को विस्मृत कर जाऊँ।

शकुन्तला : आर्यपुत्र, मैं मिथ्या भाषण नहीं करती।

दुष्यन्त : यह ढोंग है, मिथ्या है। इस नारी से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। दुष्यन्त के कामों को जगत जानता है।

शकुन्तला : आर्यपुत्र, मेरी ओर देखिये। मै दुखी नारी हूँ। मुझे शरण दीजिये।

दुष्यन्त : आप मुझ पर गुप्त प्रेम का अभियोग लगा रही हैं। —न मैं आपका पति हूँ, और न आप मेरी पत्नी।

शार्ङ्गरव : महाराज, मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि शकुन्तला झूठ नहीं बोलती। आप इसे स्वीकार कीजिये।

दुष्यन्त : असम्भव।

शार्ङ्गरव : मैं नहीं जानता था कि पुरुवंशी राजा दुष्यन्त इतने पतित हैं कि अपनी विवाहिता निर्दोष पत्नी को इतनी सरलता से भूल जायेंगे।

शकुन्तला : (रोती हुई) पति इस निर्दोष नारी का परित्याग करते हैं फिर कहाँ जायेगी यह अबला ? – आप तो राजा हैं। —न्याय कीजिये महाराज।

शार्ङ्गरव : मैं पुनः आग्रह करता हूँ। आप शकुन्तला को स्वीकार कर लें राजन्।

दुष्यन्त : तपस्वी, आप चाहते हैं कि मैं पराई नारी को अपनी पत्नी बनाने का पाप अपने सिर पर लूँ ?

शकुन्तला : भगवती वसुन्धरे, तू फट जा और मुझे अपनी गोद में ले ले।

शार्ङ्गरव : शकुन्तला,मैंने तुम्हे कण्व ऋषि के आदेश से तुम्हारे पति के घर पहुँचा दिया। स्वीकार करना या नहीं करना इनका काम है। —तुम्हें यह द्वार नहीं छोड़ना चाहिये। दासी बन कर ही सही, तुम यहीं रहो। मैं जाता हूँ।

(प्रस्थानोद्यत)

Scanned with OKEN Scanner

Scanned with OKEN Scanner

शकुन्तला : (रोती हुई) भाई शार्ग रव, मुझे छोड़कर मत जाओ।

शार्ग रव : शकुन्तला, बताओ, मैं क्या करूँ ? —राजन्, आपका निर्णय क्या है ? —स्पष्ट कहें।

दुष्यन्त : यह नारी मेरी पत्नी नहीं है। इसलिए ......

शार्ग रव : ठीक है, मैं समझ गया। यह धरती बहुत बड़ी है महाराज दुष्यन्त। मेरी बहन के भाग्य में राजसुख नहीं है। —तो बहन शकुन्तला, चलो मेरे साथ। इस पाखण्डी राजा की दृष्टि से दूर चल चलें।

(रोती हुई शकुन्तला का हाथ पकड़ कर ले जाते हैं। दुष्यन्त एकटक उधर देखते रहते हैं।)

दुष्यन्त : बड़े आश्चर्य की बात है ! लगता है, वह नारी सच बोल रही हो। उसके भाव, उसके आँसू, पवित्रता के साक्षी थे। —मेरे मन में उसके प्रति स्नेह और करुणा थी। फिर भी मैंने उसका तिरस्कार किया। लेकिन स्मरण नहीं आता कि मैंने कब उससे विवाह किया है। —ओह ! —सिर घूमने लगा ! —हे भगवान् !

(प्रस्थान। दूसरी ओर से विदूषक माढव्य एक धीवर को पकड़ कर लाते हैं।)

धीवर : स—सच कहता हूँ महाराज ! मैंने चोरी नहीं की।

माढव्य : पुनः मिथ्या भाषण ! —जानता नहीं, मैं कौन हूँ ?

धीवर : आप अवश्य कोई महान् पुरुष हैं—मुझे क्षमा कीजिये।

माढव्य : हाँ, तूने ठीक समझा—मैं महान् पुरुष हूँ—राजा दुष्यन्त का विदूषक माढव्य अर्थात् उनके अनुसार उनका छोटा भाई। मैं तुझे क्षमा नहीं कर सकता।

धीवर : मेरा अपराध ?

माढव्य : चोरी।

धीवर : कैसी चोरी ? —किस वस्तु की चोरी ?

माढव्य : इस रत्नजटित अंगूठी की चोरी। बोल, राजा की यह अंगूठी तूने कैसे चोरी की ? —बोल, अन्यथा तुझे सूली पर लटका दिया जायेगा। नहीं-नहीं, तलवार से तेरी गर्दन उड़ा दी जायेगी।

धीवर : विदूषक महाशय, मैं एक धीवर हूँ। मछली पकड़ना मेरा काम है।

माढव्य : तू कौन है या क्या करता है—मैं यह नहीं पूछ रहा हूँ।

धीवर : फिर श्रीमान् क्या पूछ रहे हैं ?

माढव्य : श्रीमान् यह पूछ रहे हैं कि राजा की यह अंगूठी तूने कैसे चोरी की ?

धीवर : श्रीमान्, मैं चोर नहीं हूँ।

माढव्य : जानता हूँ, तू साधु है। लेकिन मेरा प्रश्न......

धीवर : स्वामी, मछली पकड़ना मेरा काम है।

माढव्य : सुन्दर काम है।

धीवर : सुन्दर असुन्दर भला मैं क्या जानूँ ?—स्वामी, जिस जाति का जो काम रहता है, वही करना पड़ता है। किसी जीव को मारना है तो बुरा काम, लेकिन बड़े-बड़े समझदार और वेदों के जाननेवाले भी यज्ञ के लिए पशुओं की हत्या करते हैं।

माढव्य : फिर तू बहक गया। मेरा सरल प्रश्न है—बिल्कुल सरल। —यह अंगूठी तुझे कहाँ मिली ?

Scanned with OKEN Scanner

Scanned with OKEN Scanner

धीवर : यह प्रश्न ठीक है। —आप तो मुझ पर चोरी का अभियोग लगा रहे थे। मैं फिर कहता हूँ—मैं चोर नहीं हूँ।

माढव्य : मान लिया कि तुम चोर नहीं हो। –फिर यह अंगूठी....

धीवर : ध्यान से मेरा कहना सुनिये। —एक दिन एक बड़ी मछली मैंने पकड़ी।

माढव्य : बहुत सुन्दर। आगे क्या हुआ ?

धीवर : जब उसे काट रहा था तो उसके उदर में यह चमकती अंगूठी दिखाई पड़ी। मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। उसको बेचने के लिए मैं इस अंगूठी को दिखा रहा था कि आपके आदमियों ने मुझे पकड़ लिया। आप ही बताइये, मेरा दोष क्या है ?

माढव्य : सुनो धीवर, मुझे सन्देह है—यह अवश्य महाराज दुष्यन्त की अंगूठी है क्योंकि इस पर महाराज का नाम खुदा है।

धीवर : श्रीमान्, वह नाम ही तो मेरी विपत्ति का घर बना है। मेरा निवेदन है कि आप इस अंगूठी को ले लें और मेरी जान छोड़ दें। मैं बाल-बच्चे वाला हूँ श्रीमान्।

माढव्य : सुनो धीवर, मैं यह अंगूठी राजा को दिखाता हूँ। वे जैसा आदेश देंगे, वैसा ही मैं करूँगा। तुम यहीं ठहरो। मैं शीघ्र आता हूँ। (जाते हुए फिर मुड़कर)—और सुनो धीवर, भागने की चेष्टा मत करना अन्यथा राजा के सैनिक तुम्हें फिर बन्दी बना लेंगे और तुम्हारा सिर काट दिया जायेगा।

धीवर : श्रीमान्, मेरे सिर पर दया कीजिये। मैं भागूँगा नहीं। आपके आने तक मैं यहीं रहूँगा।

माढव्य : ठीक है। मैं शीघ्र आता हूँ। (प्रस्थान)

धीवर : बुरी तरह फँस गया हूँ। न रहने में कुशल है और न भागने में। चोरी मैंने नहीं की, लेकिन ये महापुरुष मुझे चोर बना रहे हैं। —भाग चलूँ। लेकिन कहीं किसी ने देख लिया तो सिर अपने स्थान पर नहीं मिलेगा। —भारी चक्कर है। —भगवान्, रक्षा करो। मैं चोर नहीं हूँ, सीधा-सादा धीवर हूँ।

(माढव्य का पुनः प्रवेश)

माढव्य : तू अभी तक यहीं खड़ा है।

धीवर : श्रीमान्, आपके आदेश का पालन कर रहा हूँ।

माढव्य : धीवर, राजा अंगूठी देखते ही ... ...

धीवर : राजा को अंगूठी देखते ही क्या हुआ श्रीमान् ?

माढव्य : वे चिन्तित हो गये।

धीवर : चिन्तित हो गये। बुरा हुआ।

माढव्य : फिर उन्होंने आदेश दिया कि ....

धीवर : ब—ब—बस कीजिये श्रीमान्। मैं जानता हूँ कि उनका आदेश क्या होगा।

माढव्य : बता, उनका क्या आदेश है ?

धीवर : यही कि उस चोर धीवर का सिर काट डाला जाये।

(माढव्य जोर से हँसते हैं)

धीवर : ठीक कहता हूँ न श्रीमान् ?

माढव्य : तू मूर्ख है।

Scanned with OKEN Scanner

धीवर : इसमें क्या सन्देह है अन्यथा बिना चोरी किये मैं दंड क्यों भोगता ?

माढव्य : अरे मूर्ख, राजा ने तेरे लिए धन देने का आदेश दिया है।

धीवर : श्रीमान् ने क्या कहा ?

माढव्य : राजा ने तेरे लिए धन देने का आदेश दिया है।

धीवर : प्राण बचे भगवान्। —श्रीमान्, जान पड़ता है कि यह अंगूठी सचमुच राजा की ही है और वे इसे बहुत चाहते हैं। क्यों श्रीमान् ?

माढव्य : तू ठीक कहता है। चल मेरे साथ, तुझे धन दिला दूँ।

धीवर : मैं बहुत प्रसन्न हूँ श्रीमान्। आप बड़े दयावान हैं। आपने मेरे प्राण बचाये हैं। आधा धन मैं आपको दे दूँगा।

माढव्य : (डाँटते हुए) बहस बन्द कर। मेरे साथ चल।

धीवर : (सहमे स्वर में) चलता हूँ श्रीमान्—चलता हूँ।

(आगे-आगे माढव्य और पीछे-पीछे धीवर का प्रस्थान। दूसरी ओर से राजा दुष्यन्त का प्रवेश। चिन्तित भाव। अंगूठी को देख रहे हैं।)

दुष्यन्त : मैंने भयानक अपराध किया है। अपनी विवाहिता पत्नी को अपमानित कर द्वार से दूर हटा दिया। इस अंगूठी को देखते ही मुझे सब कुछ स्मरण हो गया। तपोवन में हिरण का आखेट, फिर शकुन्तला से भेंट, प्रेम में पागल मैं और उधर निर्दोष शकुन्तला ! फिर गन्धर्व-विवाह और तपोवन से मेरा प्रस्थान ! लगता है, ये सारी घटनायें अभी-अभी घटी हों। —और इधर शकुन्तला

का रोता हुआ चेहरा, बार-बार निवेदन, और पाषाण-हृदयी मैं। कहाँ गयी शकुन्तला ? —किसी ने कहा कि जब वह बाहर आकर रोने लगी तो एक दिव्य ज्योति आई और उसे अपनी गोद में लेकर चली गई। मेनका अप्सरा की पुत्री शकुन्तला अवश्य अप्सरा के लोक में चली गई। —वियोग और व्यथा की आग में मैं दग्ध हो रहा हूँ।

(माढव्य का प्रवेश)

माढव्य : महाराज कदाचित चिन्तित हैं।

दुष्यन्त : हाँ मित्र, मैं शकुन्तला के लिए चिन्तित हूँ। मैंने यह अंगूठी उसे ही दी थी। पता नहीं कैसे, मैं ये सब भूल गया। शकुन्तला को पहचान तक नहीं पाया।

माढव्य : आपका मन अशान्त है। आप चल कर प्रमोदवन में मन बहलायें जहाँ न जाड़े की ठंढक है और न गर्मी की तपन।

दुष्यन्त : शकुन्तला की सभी बातें तुम्हें बता चुका हूँ माढव्य।

माढव्य : लेकिन तपोवन में आपने मुझसे यह भी कहा था कि उस देवी के लिए आपके मन में कोई आकर्षण नहीं है।

दुष्यन्त : हाँ, कहा था तुम्हें भुलावे में डालने के लिए।

माढव्य : जो होने वाला है, वह होकर ही रहता है महाराज।

दुष्यन्त : मित्र ! जिस समय मैंने शकुन्तला को लौटाया, उस समय की उसकी दशा भूल नहीं पाता। उसने नीरभरे नयनों से मेरी ओर देख कर आश्रय की भिक्षा माँगी और मैं निष्ठुर बना रहा।

Scanned with OKEN Scanner

माढव्य : लेकिन महाराज, चिन्ता न करें। यह अंगूठी बता रही है कि देवी शकुन्तला से भेंट अवश्य होगी।

दुष्यन्त : इस अंगूठी पर मुझे बड़ा तरस आता है कि यह अंगुली से निकल कर गिर कैसे पड़ी।

माढव्य : क्षमा कीजिये महाराज, क्या मैं जान सकता हूँ कि आपकी यह अंगूठी देवी शकुन्तला के पास कैसे पहुँच गई।

दुष्यन्त : जिस समय मैं वन से अपनी राजधानी में लौट रहा था, उस समय शकुन्तला ने दुखभरे स्वर में पूछा था कि कितने दिनों में स्मरण कीजियेगा। तब उसकी अंगुली में यह अंगूठी पहनाते हुए मैंने कहा था—इस अंगूठी पर लिखे हुए मेरे नाम के अक्षरों को प्रतिदिन गिनना। जब सभी अक्षर गिन लोगी, तब रनिवास का कोई सेवक तुम्हें बुलाने के लिए यहाँ पहुँचेगा।

माढव्य : फिर क्या हुआ ?

दुष्यन्त : फिर वही हुआ जो नहीं होना चाहिये था अर्थात् मैं यहाँ आकर सब कुछ भूल गया।

माढव्य : फिर यह अंगूठी मछली के उदर में कैसे चली गई—यह बात मेरी मोटी बुद्धि में अभी तक नहीं आयी।

दुष्यन्त : जब शकुन्तला गंगा पार कर रही थी तो यह अंगूठी धारा में गिर पड़ी।

माढव्य : ओहो! —उसके बाद मछली ने इसे उदरस्थ कर लिया। क्यों महाराज ?

दुष्यन्त : ठीक समझा तुमने माढव्य।

माढव्य : अब आप विश्राम करें महाराज।

दुष्यन्त : विश्राम ? —नहीं मित्र, अब विश्राम कहाँ ? —हमारे पितर अलग चिन्ता में पड़े होंगे कि मेरी मृत्यु के बाद उनका तर्पण कौन करेगा। मेरे कुल को चलाने वाली पत्नी तो चली गई मित्र।

प्रतिहारी : (नेपथ्य से) देवराज इन्द्र के सारथी मातलि हस्तिनापुर के सम्राट् के दर्शन करना चाहते हैं।

दुष्यन्त : मातलि ? —इन्द्र का सारथी ? —ठीक है, उसे आने दो।

(मातलि का प्रवेश)

मातलि : मातलि हस्तिनापुर-सम्राट् के सामने सिर झुकाता है। (नतमस्तक)

दुष्यन्त : स्वागत है मातलि। कहो, देवराज इन्द्र प्रसन्न तो हैं।

मातलि : महाराज, देवराज संकट में हैं। सहायता लेने के लिए उन्होंने मुझे आपकी सेवा में भेजा है।

दुष्यन्त : मेरे मित्र पर कौन-सा संकट है ?

मातलि : कालनेमि के वंशज दानवों का एक दल उनसे बराबर युद्ध कर रहा है। देवराज से वह दल परास्त नहीं हो रहा है।

दुष्यन्त : हाँ, महर्षि नारद ने एक बार मुझसे भी कहा था।

मातलि : आपके मित्र राक्षसों से परेशान हैं। उन राक्षसों का दमन आपही कर सकते हैं। इसलिए आप शीघ्र चलने की कृपा करें। देवराज का रथ आपके लिए प्रस्तुत है।

Scanned with OKEN Scanner

Scanned with OKEN Scanner

दुष्यन्त : मातलि, यह देवराज का अनुग्रह है कि उन्होंने मुझे यह सम्मान दिया है।

मातलि : महाराज, मैं चाहता हूँ कि आपका क्रोध जागृत हो और आप दानवों का दमन कर देवराज की चिन्ता को दूर करें।

दुष्यन्त : मातलि, मेरे धनुर्वाण जब तक जीवित हैं, देवराज निर्भय रहें। माढव्य, आमात्य को मेरा आदेश सुना दो कि मेरी अनुपस्थिति में शासन-व्यवस्था देखें। चलो मातलि, अभी चलता हूँ।

(सबका प्रस्थान)

—o—

पांचवाँ दृश्य

स्थान—वनप्रदेश

(धनुर्वाण धारण किये राजा दुष्यन्त और मातलि का प्रवेश। दानव परास्त किये जा चुके हैं। दुष्यन्त इन्द्रपुरी से लौट रहे हैं।)

मातलि : महाराज, आपकी कृपा से दानव परास्त किये जा चुके हैं और देवराज इन्द्र आपके प्रति कृतज्ञ हैं।

दुष्यन्त : मातलि, मैं देवराज की मित्रता को सबसे अधिक महत्व देता हूँ। उनके लिए मैं अपने प्राण तक उत्सर्ग कर सकता हूँ।

मातलि : देवराज को आपके ऊपर अगाध विश्वास है, इसीसे उन्होंने संकट के समय आपका स्मरण किया। आपकी वीरता के आगे दानव ठहर नहीं सके।

दुष्यन्त : यद्यपि मैंने देवराज इन्द्र की आज्ञा का पालन ही किया, पर जिस तरह उन्होंने मेरा सत्कार किया, उससे मुझे लज्जित होना पड़ा। कहाँ देवराज इन्द्र और कहाँ मैं?

मातलि : आप महान् हैं महाराज दुष्यन्त। —आप अपने को छोटा समझते हैं—यही तो आपकी महानता है। जिस काम को इन्द्र न कर सके, उसे आपने कर दिखाया। आपके शौर्य ने देवराज को भी अचरज में डाल दिया। वे तो समझते हैं कि कदाचित् आपके योग्य आपका सत्कार हो नहीं पाया।

Scanned with OKEN Scanner
Scanned with OKEN Scanner

: मातलि, देवताओं के सामने इन्द्र ने मुझे अपने साथ सिंहासन पर बैठाया, अपने गले से उतार कर माला मेरे गले में डाल दी, मेरा अपूर्व स्वागत किया—यह मुझ जैसे मानव के लिए कल्पना के परे है।

मातलि : ऐसा ही संकट इन्द्र के जीवन में एक बार और आया था। उस समय नृसिंह भगवान् ने अपने नखों से उनके शत्रु का उदर चीर डाला था, दूसरी बार आपने अपने तीखे वाण से शत्रुओं को मार भगाया।

दुष्यन्त : यह सब देवराज की कृपा से हुआ। मैंने तो उनके आदेश का पालनमात्र किया।

मातलि : आज स्वर्गलोक में आपकी कीर्त्ति का गान हो रहा है। देवगण आपके पराक्रम की कथा कल्पवृक्ष के पत्तों पर लिख रहे हैं।

दुष्यन्त : मातलि, स्वर्ग से वापस तुम मुझे यहाँ तक ले आये। बताओ तो, सामने समुद्र तक फैला और मेघों के समान विशाल वह कौन-सा पर्वत है ?

मातलि : महाराज, वह हेमकूट-पर्वत है जिस पर किन्नरगण रहते हैं और जहाँ तपस्या करने पर शीघ्र सिद्धि मिल जाया करती है। यहीं देवों और दानवों के पिता स्वयंभू मरीचि के पुत्र प्रजापति कश्यप अपनी पत्नी के साथ तपस्या में लीन हैं।

दुष्यन्त : ऐसे स्थान पर पहुँच कर मैं अपने को भाग्यवान् मानता हूँ। क्यों मातलि ?

मातलि : यदि आप थोड़ी देर विश्राम करें तो मैं महर्षि कश्यप के बारे में पता लगा आऊँ।

दुष्यन्त : मैं उनके दर्शन करना चाहता हूँ मातलि। तुम जाकर पता लगा आओ। मैं यहीं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा।

मातलि : जो आज्ञा। (प्रस्थान)

दुष्यन्त : कैसा रमणीय है यह स्थल ! चारों ओर शान्ति ! कोई कोलाहल नहीं। अरे ! मेरी दाहिनी भुजा क्यों फड़क रही है ? —यह कैसा शकुन है ?

ऋषिकुमार : (नेपथ्य में) सर्वदमन, छोड़ दे सिंह के बच्चे को।

सर्वदमन : (नेपथ्य में) नहीं छोड़ूँगा।

ऋषिकुमार : (नेपथ्य में) यदि सिंहनी देख लेगी तो तुझ पर झपट पड़ेगी।

सर्वदमन : (नेपथ्य में) मैं सिंहनी से भी नहीं डरता।

दुष्यन्त : कौन है वह बालक जो सिंह के बच्चे को घसीट रहा है ? —अरे, अब तो वह सिंह के बच्चे के दाँत गिन रहा है। —आश्चर्य ! —कौन है वह निर्भीक बालक ? वे दोनों तो इधर ही आ रहे हैं।

(सर्वदमन का हाथ पकड़े ऋषिकुमार का प्रवेश)

ऋषिकुमार : सर्वदमन ! —तू बड़ा नटखट है। तू इन पशुओं को अकारण ही सताया करता है।

सर्वदमन : मैं तो उस सिंह के बच्चे के साथ खेलता हूँ।

ऋषिकुमार : यदि उसकी माँ सिंहनी देख ले तो ?

सर्वदमन : देख ले तो देख ले। मैं किसी से नहीं डरता।

को देखकर) क्यों जी, तुम कौन हो ?

Scanned with OKEN Scanner

दुष्यन्त : बालक, मेरे निकट आओ।

(सर्वदमन निकट आता है। दुष्यन्त उसके सिर पर हाथ रखते हैं। सर्वदमन दुष्यन्त की ओर प्यार से देखता है।)

दुष्यन्त : तुम्हारे शरीर का स्पर्श मुझे सुख प्रदान कर रहा है बालक।

सर्वदमन : मैं बालक नहीं हूँ श्रीमान्। मेरा नाम सर्वदमन है।

दुष्यन्त : (हँसकर) मैं भूल गया। तुम बालक नहीं, सर्वदमन हो।

ऋषिकुमार : श्रीमान्, यह बड़ा नटखट है। इसीलिए ऋषियों ने इसका नाम सर्वदमन रखा है।

दुष्यन्त : यह किसका पुत्र है ऋषिकुमार?

ऋषिकुमार : यह कुरुवंश का राजकुमार है श्रीमान्।

सर्वदमन : हाँ जी, मैं राजकुमार हूँ—इस जंगल का राजकुमार। अब तो समझ गये?

दुष्यन्त : हाँ जी, समझ गया।

ऋषिकुमार : श्रीमान्, इसकी माँ किसी अप्सरा की कन्या है। इसका जन्म मुनि के आश्रम में हुआ है।

दुष्यन्त : आश्चर्य!

ऋषिकुमार : अरे, इसका मणिबन्ध कहाँ खो गया?

(दुष्यन्त रक्षा की जड़ी (मणिबन्ध) धरती पर से उठाना चाहते हैं)

ऋषिकुमार : श्रीमान्, उसे मत उठाइये। मत उठाइये।

(दुष्यन्त मणिबन्ध उठाकर सर्वदमन की बाँह पर बाँधते हैं)

दुष्यन्त : क्यों भाई, बात क्या है?

सर्वदमन : (ऋषिकुमार से) बताओ न, बात क्या है?

ऋषिकुमार : बात यह है कि......

दुष्यन्त : हाँ हाँ, क्या बात है?

ऋषिकुमार : ऋषि कश्यप ने इसके बचपन में ही यह जड़ी इसके हाथ में बाँधी थी और कहा था कि यदि यह पृथ्वी पर गिर पड़े तो इसके माता-पिता को छोड़ कर दूसरा कोई व्यक्ति न उठावे।

दुष्यन्त : और यदि कोई अन्य व्यक्ति उठा ले तो क्या होगा?

ऋषिकुमार : यह जड़ी साँप बन कर उसे डँस लेगी।

दुष्यन्त : क्या ऐसा कभी किसी ने देखा भी है?

ऋषिकुमार : बहुत बार।

दुष्यन्त : आश्चर्य! —लेकिन मैंने तो इसे आसानी से उठा लिया। —क्या मैं—ओह! —मेरा भाग्य क्या इतना बड़ा है?

ऋषिकुमार : आश्चर्य तो है ही। पता नहीं, जड़ी साँप क्यों नहीं बनी।

दुष्यन्त : अरे, सामने से वह तपस्विनी कौन आ रही है?

सर्वदमन : वह मेरी माँ है।

ऋषिकुमार : हाँ श्रीमान्, वही सर्वदमन की माँ है। —अब मैं जाता हूँ। (प्रस्थान)

दुष्यन्त : अरे, यह क्या? तपस्विनी के वेश में शकुन्तला? तो क्या यह शकुन्तला का पुत्र है?

(उलझे बाल को बाँधती हुई तपस्विनी के वेश में शकुन्तला का प्रवेश। दोनों एक-दूसरे की ओर देखते रहते हैं।)

Scanned with OKEN Scanner

Scanned with OKEN Scanner

शकुन्तला : आप—आप—

दुष्यन्त : हाँ शकुन्तले, मैं हूँ भाग्यहीन दुष्यन्त—तुम्हारा पति।

शकुन्तला : पति ? —ओह ! —आर्यपुत्र, बताइये, मेरा अपराध क्या था ? —अपराध कदाचित् यही था कि मैं अनजाने में आपकी पत्नी बनी।

दुष्यन्त : शकुन्तला, मैं निष्ठुर हूँ। क्षमा करो।

शकुन्तला : आर्यपुत्र ! (रो पड़ती है)

सर्वदमन : माँ ! माँ ! —तुम रोती क्यों हो ? —ये सज्जन कौन हैं ?

शकुन्तला : तुम्हारे पिता—हस्तिनापुर के सम्राट्।

दुष्यन्त : शकुन्तला, मेरे कारण तुम्हें तपस्विनी का जीवन व्यतीत करना पड़ा। तप करते-करते तुम्हारा मुखमण्डल उदास हो गया, केश की चिकनाई समाप्त हो गयी। मेरी स्मृति पर परदा पड़ा था, वह हट गया। तुम नहीं जानती हो—मैं भी इतने दिनों तक घुल-घुल कर जीता रहा।

शकुन्तला : आर्यपुत्र ! आपकी जय हो !

दुष्यन्त : तुमने रुँधे गले से 'जय' शब्द कहा है। सचमुच आज मेरी जीत हुई। तुम्हारे जाने के बाद ही मुझे सारी बातें स्मरण हो आयीं। पता नहीं, क्यों मैं उस समय सब कुछ भूल बैठा था।

शकुन्तला : आर्यपुत्र, पता नहीं किस अभिशाप के कुप्रभाव से यह सब हुआ।

दुष्यन्त : मैंने तुम्हारा अपमान किया है शकुन्तला। मुझे क्षमा करो।

शकुन्तला : आर्यपुत्र ! आपकी उँगली में वह अंगूठी कैसी है ?

दुष्यन्त : इसी अंगूठी का तो सारा खेल है सुन्दरी। इसके मिल जाने से मुझे सारी बातें स्मरण हो आयीं। —इस अंगूठी को तुम फिर धारण करो।

शकुन्तला : नहीं महाराज, अब मैं इसका विश्वास नहीं करती। आप ही इसे धारण करें।

(मातलि का प्रवेश)

मातलि : बधाई है महाराज ! —बहुत दिनों के बाद आपने अपनी पत्नी को देखा है।

दुष्यन्त : मातलि, आज मैं अपने पुत्र से भी प्रथम बार मिल रहा हूँ। इसके लिए भी बधाई दो।

मातलि : बधाई है ! बधाई है महाराज !

दुष्यन्त : यह देवराज की कृपा का फल है कि आज मुझे पत्नी और पुत्र के एक साथ दर्शन हुए। क्या देवराज को इसका पता है ?

मातलि : देवताओं से कोई बात छिपी नहीं रहती महाराज। —हाँ, ऋषिश्रेष्ठ आपसे मिलने के लिए तैयार बैठे हैं।

दुष्यन्त : उत्तम ! चलो शकुन्तला ! चलो सर्वदमन ! ऋषिश्रेष्ठ से इस शुभ अवसर पर आशीर्वाद के लिए प्रार्थना करें।

Scanned with OKEN Scanner

Scanned with OKEN Scanner

शकुन्तला : आर्यपुत्र के साथ ऋषिश्रेष्ठ के सामने जाने में लज्जा का अनुभव होता है।

दुष्यन्त : लज्जा की कोई बात नहीं। बड़ों के सामने हमें आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए चलना ही चाहिये। चलो मेरे साथ।

(सर्वदमन को गोद में लिये जाते हैं। पीछे-पीछे शकुन्तला और उसके पीछे मातलि का भी प्रस्थान। संगीत। दृश्य-परिवर्तन। महर्षि कश्यप के आसपास दुष्यन्त, शकुन्तला, सर्वदमन और मातलि खड़े दिखाई देते हैं।)

कश्यप : रथेनानुद्धातस्तिमितगतिना तीर्णजलधिः
पुरा सप्तद्वीपां जयति वसुधामप्रतिरथः।
इहायं सत्त्वानां प्रसभदमनात्सर्वदमनः
पुनर्यास्यत्याख्यां भरत इति लोकस्य भरणात्॥

राजन्, यह बालक अपने दृढ़ और सीधे चलनेवाले रथ पर चढ़कर समुद्र पार करके सातों द्वीपों वाली इस पृथ्वी को अकेला जीत लेगा। संसार का कोई वीर इसके सामने टिक न सकेगा। यहाँ इसने सब जीवों को तंग कर रखा था, इसीसे इसका नाम सर्वदमन रखा गया। आगे चल कर यह सारे संसार का भरण-पोषण करेगा। उस समय इसका नाम भरत होगा।

दुष्यन्त : प्रजापति, जिस बालक के संस्कार आपके द्वारा किये गये हों, उसे तो सर्वगुणसम्पन्न होना ही चाहिये।

कश्यप : तुम्हारे मन में अपने अपराध के लिए प्रायश्चित हो रहा है दुष्यन्त। लेकिन तुमने कोई अपराध नहीं किया है।

दुष्यन्त : यह आप क्या कहते हैं ऋषिश्रेष्ठ ?

कश्यप : तुम नहीं जानते। शकुन्तला भी नहीं जानती। यह सब दुर्वासा ऋषि के शाप के कारण हुआ। अनजाने में शकुन्तला ने दुर्वासा का अपमान किया था। बाद में दुर्वासा ने यह भी कहा कि यदि दुष्यन्त अपने दिये हुए कोई आभूषण देख लेगा तो उसे सब कुछ स्मरण हो आयेगा। इसीसे अंगूठी देखने के बाद तुम्हें सब कुछ स्मरण हो आया।

शकुन्तला : हे भगवान् !

कश्यप : चिन्ता न करो बेटी। अब संकट की घड़ी समाप्त हो हो गयी। दुर्वासा का शाप तो कब दूर हो गया। —कण्व ऋषि को भी इन बातों की जानकारी है।

दुष्यन्त : मैं डर रहा था कि कण्व ऋषि मुझ पर अवश्य ही क्रुद्ध होंगे।

कश्यप : मैं आज ही अपने शिष्य गालव को आकाशमार्ग से कण्वऋषि के आश्रम में भेजकर तुम दोनों के मिलन का शुभ समाचार भेजता हूँ। —अब तुम अपने पुत्र और स्त्री के साथ हस्तिनापुर लौट जाओ। —जाने के पहले बोलो कि तुम और क्या चाहते हो ?

Scanned with OKEN Scanner

दुष्यन्त : ऋषिश्रेष्ठ, आशीर्वाद दीजिये कि राजा सर्वदा अपनी प्रजा की भलाई में लगा रहे, विद्वान् कवियों की वाणी का हर जगह सम्मान हो और भगवान शिव ऐसी कृपा करें कि मेरा पुनर्जन्म न हो।

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः
सरस्वती श्रुतमहतां महीयताम्।
ममापि च क्षपयतु नीललोहितः
पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः ॥

(महर्षि कश्यप आशीर्वाद देते हैं। सभी नतमस्तक होते हैं।)

समाप्त

Scanned with OKEN Scanner